भगवान् बुद्ध का आर्य अष्टांगिक मार्ग एवं विपस्सना

डॉ0 उत्तरा यादव,
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
महिला पी0जी0 कॉलेज, अमीनाबाद, लखनऊ

''अतीत पर ध्यान मत दो, भविष्य के बारे में मत सोचो, अपने मन को वर्तमान क्षण पर केन्द्रित करो।'' — गौतम बुद्ध

महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त एवं उनका जीवन मानवता के लिए एक वरदान है। उनका मध्यम अष्ठमार्ग अपने दैनिक जीवन में उतारकर कोई भी व्यक्ति अपना जीवन सफल एवं पूर्ण कर सकता है। उनके विचार मानव मात्र के लिए भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों में शाश्वत, सार्वभौमिक तथा अत्यन्त उपयोगी है।

भगवान् बुद्ध ने धर्म–चक्र–प्रवर्तन के समय प्रथम पॉच भिक्खुओं से कहा, ''मित्रों धर्म पथ के अनुगामी को 'अतियों' से बचना चाहिए। एक छोर तो विषय वासना में आकण्ठ डूबने का है और दूसरा छोर तपश्चर्या के द्वारा शरीर को कष्ट देने या मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित करने का है। उन दोनों 'अतियों' से अंत में विफलता ही हाथ लगती है। जो मार्ग मैंने खोजा है, वह मध्य मार्ग (मज्झ मार्ग) है जिसमें दोनों प्रकार की 'अतियों' के लिए कोई स्थान नहीं और यह मार्ग ज्ञान, मुक्ति और शान्ति के पथ पर अग्रसर करने की क्षमता रखता है। यह पवित्र आष्टांगिक मार्ग है जिसके माध्यम से सम्यक् ज्ञान, विचार, वाणी, कर्म, जीवनयापन, प्रयास, चेतना एवं सम्यक् एकाग्रता सम्भव होती है। **मैंने इस पावन आष्टांगिक मार्ग को अपनाया है और ज्ञान, मुक्ति ओर शान्ति की अनुभूति की है।''**

''भाइयों इस मार्ग को मैं इसलिए सम्यक् मार्ग कहता हूँ कि इसमें न तो कष्टों से बचा जाता है और न उसको अस्वीकार किया जाता है बल्कि कष्टों को सीधे सामना किया जाता है ताकि उनसे उबरा जा सके। पवित्र आष्टांगिक मार्ग **सचेतनावस्था में जीने का मार्ग है।** सतत् सचेतनावस्था इसकी आधारशिला है। सचेतनावस्था का अभ्यास करने से चित्त में इतनी एकाग्रता आ जाती है कि इससे ज्ञान (प्रज्ञा) की प्राप्ति की जा सकती है। सम्यक् एकाग्रता से चेतना, विचारों, वाणी, कर्म, जीवनयापन और प्रयास की सम्यकता प्राप्त हो पाती है। इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त होता है उससे कष्टों के हर बंधन से मुक्ति मिलती है और सम्यक् शान्ति और आनन्द का उदय होता है।''

चार आर्यसत्यः

1. **दुःखों की विद्यमानता**
2. **दुःखों का मूल**
3. **दुःखों का अन्त, और**
4. **दुःखों के नाश का उपाय एवं मार्ग।**

1. **पहला आर्यसत्य है–''दुःख है।''** जन्म लेना दुःख है, बुढ़ापा आ जाना दुःख है, बीमारी दुःख है, मृत्यु दुःख है, अप्रिय चीजों से संयोग दुःख है, प्रिय चीजों से वियोग दुःख है। मनचाहा न होना दुःख है। अनचाहा होना दुःख है। संक्षेप में पॉच स्कन्धों (पंचतत्व) से उपादान (अतिशय तृष्णा का होना) होना दुःख है। शोक, द्वेष, उद्वेग, भय, निराशा, प्रियजन का वियोग, अप्रियजनों से मिलन भी दुःख है। कामनाएँ, मोह–ममता और जिन पंच

स्कन्दों से जीवधारियों का निर्माण हुआ है, वे सभी दुःखमय हैं।

2. **दूसरा आर्यसत्य है–"इस दुःख का मूल (कारण) है।"** राग के कारण पुनर्भव अर्थात् पुनर्जन्म होता है जिससे इस और उस जन्म के प्रति अतिशय लगाव उत्पन्न होता है। यह लगाव काम–तृष्णा के प्रति होता और विभव तृष्णा के प्रति होता है। दुःख का मूल कारण है– अज्ञान और लोगों द्वारा जीवन विषयक सत्य का दर्शन न कर पाना। सांसारिक वस्तुओं को तृष्णा, क्रोध, द्वेष, दुःख, चिन्ता, भय और निराशा की आग में जीवधारी झुलसते रहते हैं।

3. **तीसरा आर्यसत्य है–"दुःख निरोध अर्थात् दुःखो का अन्त"।** इस तृष्णा को जड़ से पूर्णतः उखाड़ देने से इस दुःख का जड़ से निरोध हो जाता है जीवन–मरण का। जीवन के सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो जाने (मैं आत्मा हूँ) पर प्रत्येक दुःख एवं शोक का अन्त हो जाता है और इससे शान्ति और आनन्द का उदय होता है। मैं अजर–अमर, अविनाशी, शाश्वत, साक्षी, दृष्टा, सच्चिदानन्द हूँ का ज्ञान होना ही दुःखों का अन्त है।

4. **चौथा आर्यसत्य है–"दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा (दुःख से मुक्ति का मार्ग)"।** इस दुःख को जड़ से समाप्त किया जा सकता है और जिसके लिए तथागत ने आठ अंगों वाला आर्य आष्टांगिक मार्ग खोज निकाला है–सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि है। दुःखों के नाश का उपाय एवं मार्ग है सचेतनावस्था का सतत् अनुसरण करने से इसे आष्टांगिक मार्ग का पोषण होता है। सतत् सचेतनावस्था के फलस्वरूप चित्त की एकाग्रता एवं ज्ञान प्राप्ति सम्भव होती है जिससे आपको प्रत्येक दुःख और कष्ट से मुक्ति मिलती है और शान्ति एवं आनन्द की अनुभूति होती है।

पवित्र अष्टांगिक मार्ग

सभी दुःखों से वर्तमान जीवन में ही मुक्ति पाने के लिए तथा इसी जीवन में वास्तविक सुख–शान्ति को प्राप्त करने के लिए भगवान् बुद्ध ने यह **आर्य आष्टांगिक मार्ग बताया है।** इन मार्गों का स्वयं अनुभव कर जानना आवश्यक है। इसके आठ अंग इस प्रकार हैं–

1. **सम्यक् दृष्टिः–** सम्यक् दृष्टि अर्थात् सम्यक् दर्शन, यहॉ दर्शन शब्द का सही जो बात, जो वस्तु जैसी है, उसे वैसे ही उसके गुण–धर्म–स्वभाव में देखना अर्थात् अनुभव से जानना है। 'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि'

2. **सम्यक् संकल्पः–** संकल्प अर्थात् चिंतन, मनन, हमारा संकल्प हमारी सोच सही व सकारात्मक होनी चाहिए।

3. **सम्यक् वचनः–** हमारी वाणी सम्यक् हो अर्थात् मधुर बोलें, सत्यवादी हों, वाणी मृदु और संयमित हों।

4. **सम्यक् कर्मः–** मन, वचन और शरीर द्वारा किये जाने वाले कार्य सम्यक् रहें अर्थात् ठीक रहें।

5. **सम्यक् आजीविकाः–** हमारी आजीविका का रास्ता सम्यक् अर्थात् सही होना चाहिए, आजीविका के साधन में किसी व्यक्ति को हानि नहीं होनी चाहिए।

6. **सम्यक् व्यायामः–** मन की कमजोरी दूर करने के लिए उसके विकार को दूर करने के लिए मन का व्यायाम आवश्यक है, मन का स्वयं परीक्षण करें।

7. **सम्यक् स्मृतिः–** स्मृति का अर्थ वर्तमान क्षण में शरीर में होने वाली संवेदनाओं के प्रति सजगता व जागरुकता है।

8. **सम्यक् समाधिः–** कुशल चित्त और निर्मल चित्त की एकाग्रता को ही सम्यक् समाधि कहते हैं। विपस्सना साधना द्वारा सम्यक् समाधि का योग्य अभ्यास किया जा सकता है।

यह आर्य आष्टांगिक मार्ग सभी दुःखों से मुक्ति पाने व वास्तविक सुख–शान्ति से जीवन जीने का अनमोल रास्ता है, यह वर्तमान जीवन में ही निर्वाण का साक्षात्कार करा सकता है।

''जो परिव्रजित हैं, उन्हें दो अतियों से बचना चाहिए, पहली अति है कामभोगों में लिप्त रहने वाले जीवन की, यह कमजोर बनाने वाला है, गंवारू है, तुच्छ है और किसी काम का नहीं है। दूसरी अति है आत्मपीड़ा प्रधान जीवन जो कि दुःख होता है, व्यर्थ होता है और बेकार होता है।

इन दोनों अतियों से बचे रहकर ही तथागत ने ''पवित्र मध्यम मार्ग'' का आविष्कार किया है।

गौतम बुद्ध ने भिक्खुओं को देशना देते हुए कहा कि, ''सभी धर्म दग्ध हैं। जल क्या रहा है? छः ज्ञानेन्द्रियॉ नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, शरीर और चित्त सभी दग्ध हैं। इन इन्द्रियों के विषयरूप रूप, ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श, मन के संकल्प–विकल्प सभी दग्ध हैं। इन छहों गुण, धर्म–दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद, भावनाऍं और विचार भी दग्ध हो रहे हैं। ये सब ऐषणाओं, घृणा और भ्रम की लपटों के कारण दग्ध हो रहे हैं। सब जन्म, जरा, रोग एवं मरण और कष्टों, उद्वेगों, हताशा, चिन्ता, भय और निराशा की ज्वाला से दग्ध हैं।''

बुद्ध ने बताया कि, ''प्रत्येक वस्तु सारहीन और असत्य है। उन्होंने कहा कि पंचस्कन्द सतत प्रवाहमान पॉच सरिताओं के समान हैं जिनमें पृथक् अस्तित्ववान अथवा स्थायी (नित्य) कुछ भी नहीं है। ये पंच स्कन्द हैं–शरीर, कामनाऍं, संकल्पनाऍं, अवधारणाऍं एवं भाव–बोध। इन स्कन्दों पर ध्यान करने से इनका परस्पर और सृष्टि के साथ घनिष्ठ एवं अद्भुत सम्बन्ध दिखने लगता है।''

''यह जीवन तो आधि–व्याधियों से भरा है किन्तु इस जीवन में बहुत ही अद्भुतताऍं भी हैं। यदि कामनाओं को त्यागकर सादगी और पूर्णता के साथ जीवन व्यतीत करो तो तुम जीवन के अनेक अद्भुतताओं का अनुभव कर सकते हो। चन्द्रमा, तारकगण, सरिताऍं, पर्वत, सूर्य का प्रकाश, चिड़ियों का गान, झरनों के गिरने की मधुर ध्वनि – यह सब सृष्टि का ऐसा प्रारूप है जो हमें अनन्त आनन्द प्रदान कर सकता है और जिससे हमारा चित्त और शरीर दोनों पुष्ट होते हैं।''

गौतम बुद्ध ने पहला वर्षावास भिक्खुसंघ के साथ सारनाथ में बिताया। वर्षावास के समाप्त होने पर भिक्खुसंघ को सम्बोधित करते हुए बुद्ध ने कहा–''**चरथ भिक्खवे चारिकं, बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय, सुखाय देवमनुस्सानं मा एकेन द्वे अगमित्थ।**'' अर्थात् हे भिक्खुओं, बहुजनों के हित के लिए, बहुजनों के सुख के लिए, लोक पर अनुकम्पा करके समस्त विश्व का कल्याण के लिए लोगों के सुख के लिए, लोक पर अनुकम्पा करके समस्त विश्व के कल्याण के लिए लोगों के सुख और लाभ के लिए सभी दिशाओं में जाओ और लोगों को धम्म सिखाओ स्वयं भी इस पवित्र धम्म की साधना करते रहो, लोगों को धम्म मार्ग पर चलने

की शिक्षा दीजिये जो आदि से अन्त तक कल्याणकारी हैं।

''वयधम्मा संखारा, अप्पमादेन सम्पादेथ''

भिक्खुओं! सुनो, सारे संखार व्यय–धर्मा हैं, मरण धर्मा हैं, नष्ट धर्मा हैं, जितनी भी संस्कृत यानी बनी हुई वस्तुएँ हैं, व्यक्ति हैं, घटनाएँ हैं, स्थितियाँ हैं, वे सब नष्वर हैं, भंगुर हैं, मरणशील हैं, परिवर्तनशील हैं, यही प्रकृति का कठोर सत्य है, प्रमाद से बचते हुए आलस्य से दूर रहते हुए, सतत् सचेत और जागरुक रहते हुए, प्रकृति के इस सत्य का संपादन करते रहो! इस सत्य में स्थित रहकर अपना कल्याण साधते रहो!

यह अंतिम उपदेश देकर वैशाख **पूर्णिमा की रात के तीसरे पहर में 483 ई0पू0 को तथागत महापरिनिर्वाण** को प्राप्त हुए।

भगवान् बुद्ध का धम्म एक आविष्कार है, एक खोज है क्योंकि पृथ्वी पर जो मानवीय–जीवन है, उनके गम्भीर अध्ययन का परिणाम है और जिन स्वाभाविक–प्रवृत्तियों को लेकर आदमी ने जन्म ग्रहण किया है, उन्हें पूरी तरह समझ लेने का परिणाम है और साथ ही उन प्रवृत्तियों को भी, जिन्हें आदमी के इतिहास ने जन्म दिया है और जो अब उसके विनाश का कारण बनी हुई है।

बुद्ध का धम्म दुःखवादी है और अगर सभी निर्वाण प्राप्ति में लग जायेंगे तो भौतिक उन्नति नहीं होगी, लोग मेहनत नहीं करेंगे इत्यादि... इत्यादि। यह मिथ्यापरक बातें हैं, वास्तविकता यह है कि बुद्ध के उपदेशों का उद्देश्य मानवीय चेतना को सुधारना और परिष्कृत करना था, दुःख और क्लेश से तड़पते मानवीय जीवन को सुख और शान्ति का मार्ग दिखाना था।

भगवान् बुद्ध केवल मार्गदाता थे। अपनी मुक्ति के लिए हर किसी को स्वयं अपने आप ही प्रयास करना होता है। हमें अपने स्वयं श्रम से तरना होता है, मुक्त होना होता है। कोई तथागत बड़े प्यार से मार्ग आख्यात करता है, मार्ग निर्देशन करता है, रास्ते पर चलते हुए मुक्त स्वयं होना पड़ता है।

भगवान् बुद्ध की सबसे महत्त्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने विश्व को दिखाया कि वे स्वयं भी अन्य लोगों की ही तरह एक गृहस्थ थे, वे कहीं से अवतरित नहीं हुए थे। उनका जन्म, विवाह, गृहस्थ जीवन सामान्य और प्राकृतिक था। उन्होंने सिखाया कि कैसे एक सामान्य व्यक्ति भी अपने मेहनत, त्याग और दृढ़ निश्चय से उच्च से उच्चतम अवस्था को पहुँच सकता है।

'तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खातारों तथागता' (धम्मपद 276,) अर्थात् मैं तो मार्ग आख्यात करता हूँ तुम्हारी मुक्ति के लिए तपना तो तुम्हें ही पड़ेगा। **मुक्ति के लिए बुद्धमशरणं गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि।**

विपस्सना अर्थात् सूक्ष्मतापूर्वक देखना अर्थात् आन्तरिक शान्ति का मार्ग

भगवान् बुद्ध ने मन को ही धम्म में प्रधान स्थान दिया और मन को वश में करने के लिए मन को जीतने के लिए विपस्सना का रास्ता बताया। 'विपस्सना' पालि भाषा का शब्द है जिसका संधि–विच्छेद होता हैः– **वि + पस्सना**, 'वि' का अर्थ है–सूक्ष्मतापूर्वक, वास्तव में, पूर्णतया, सकारात्मक आदि और 'पस्सना' का मतलब है– देखना, जानना, परीक्षण–निरीक्षण करना, शोध करना, विश्लेषण करना, निष्कर्ष निकालना आदि, स्थूल हमेशा भ्रम पैदा करता है, वास्तविकता नहीं दिखलाता।

विपस्सना साधना भारतवर्ष की एक अत्यन्त पुरातन साधना पद्धति है। 2400 वर्ष पूर्व भगवान् गौतम बुद्ध ने इसकी खोज कर लोक कल्याण के लिए इसे सर्वसुलभ बनाया था।

विपस्सना साधना का मुख्य लक्ष्य **चित्त की शुद्धि करना है।** साधक, अपने अंदर संग्रहित राग, द्वेष, भय, मोह, लालच, आसक्ति इत्यादि विकारों, दैनिक जीवन के तनावों और मानसिक बंधनों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है, वह जीवन में आने वाली समस्याओं के प्रति अभिमुख होकर उनका सफलतापूर्वक समाधान खोजने में समर्थ होता है, परिस्थितियों में अविचलित रहकर उनका सामना करने की क्षमता उसमें आ जाती है।

विपस्सना बुद्ध धम्म की आधारशिला है विपस्सना से निर्वाण की अवस्था जीवनकाल में ही हासिल की जा सकती है, अर्हत अवस्था ही निर्वाण ही निर्वाण का द्योतक है। अर्हत पद पाने की चार अवस्थायें हैं:– 1–श्रोतागण, 2–सकृदागामी, 3–अनागामी, 4–अर्हत। यह चारों चित्त की अवस्थायें हैं और यह जीवनकाल में ही प्राप्त की जा सकती हैं।

किसी भी वस्तुस्थिति को विपस्सना की दृष्टि से देखना विज्ञान की उपज है। विपस्सना के द्वारा ही उन्होंने चार आर्य सत्य और शरीर–चित्त के पंच स्कंध (रूप स्कंध, विज्ञान स्कंध, संज्ञा स्कंध, वेदना स्कंध और संखार स्कंद) बताये हैं। उन्होंने छः भीतरी आयतन (छः भीतरी इन्द्रियॉ) बताये हैं, जैसे–चक्षु इन्द्रिय, जिह्वा इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय, स्पर्श इन्द्रिय। कर्ण इन्द्रिय और शरीर इन्द्रिय।

'' विविधेन पस्सति ति विपस्सना, विसेसेन पस्सति ति विपस्सना

अनेकांगेन पस्सति ति विपस्सना, विभज्जेन पस्सति ति विपस्सना ''

विविधता से, **विशेष रूप से, अनेक अंगों से विभाजन, पृथक्करण करके देखने को ही विपस्सना कहते हैं।**

बुद्ध ने जैसे मानव शरीर का विपस्सना द्वारा दर्शन किया वैसे ही मन का बड़ा सूक्ष्म विभाजन किया, शरीर और मन हमेशा परिवर्तित होते रहते हैं, बदलते रहते हैं। भगवान् बुद्ध की यह अद्भुत खोज थी, विपस्सना ध्यान बुद्ध धम्म की अनुपम देन है **'चत्तारो सतिपंडानां'** अर्थात् चार सतिपठठान के ध्यान हैं: **1–कायानुपस्सना, 2–वेदनानुपस्सना, 3– चित्तनुपसस्ना और 4–धम्मानुपस्सना।**

1. **कायानुपस्सनाः** अपनी काया में क्षण प्रतिक्षण हो रहे बदलाव को दृष्टाभाव से देखते रहना वेदनानुपस्सना कहलाता है।
2. **वेदनानुपस्सनाः** इसी तरह शरीर में प्रकट होने वाली दुःखद–सुखद और अदुःखद– असुखद वेदनाओं को, जो अनित्य हैं और हमेशा बदलती रहती हैं, उनको दृष्टाभाव से देखते रहना वेदनानुपस्सना कहलाता है।
3. **चित्तनुपस्सनाः** चित्त में उठने वाले तरह–तरह के विचारों को जो हर पल बदलते रहते हैं, उनके प्रति प्रतिक्रिया किये बिना दृष्टाभाव से देखते रहना चित्तानुपस्सना कहलाता है।
4. **धम्मानुपस्सनाः** पूरे अस्तित्व में प्रकृति के नियमों, निसर्ग की नियामता के अनुसार जो कुछ भी घट रहा है, उसका कोई कर्ता नहीं है। उस पर किसी की भी सत्ता नहीं चलती है। उसमें मैं और मेरा कहने को भी कुछ नहीं है। समस्त प्रकृति बंधे–बंधाये नियमों से अपने आप संचालित हो रही है। इस सत्य को दृष्टाभाव से यथाभूत देखना धम्मानुपस्सना कहलाता है।

पालथी मारकर, ऑखें मूंदकर भगवान् बुद्ध की जो भी मुद्रायें दिखती हैं, वह ध्यानस्त मुद्रायें ही हैं और ध्यान अर्थात् किसी बाहरी ईश्वर, आत्मा–परमात्मा का ध्यान नहीं, अपितु विपस्सना द्वारा स्वयं का बोध जानना, मन के विकारों को दूर करना, मन को परिशुद्ध, निर्मल करना, यह विपस्सना द्वारा ही संभव है। विपस्सना ध्यान वास्तविकता पर और केवल सत्य पर ही आधारित होता है। विपस्सना नैतिक समर्पण, जीवनकालिक, आत्मविश्लेषी अनुशासन, आत्मज्ञान और स्वतः उत्तरदायित्व के माध्यम से उपचार करती है। अध्यात्म के इस अभ्यास में पूरे जीवन का आलिंगन है। हमें अपने प्रति उत्तरदायी बनाती है क्योंकि यह आत्म–अवलोकन द्वारा उजागर करती है कि हम अपनी प्रतिक्रियाओं तथा मान्यताओं को अपने जीवन में कितना अपनाते हैं।

त्रिरत्न एवं पंचशील

विपस्सना साधक को **त्रिशरण (बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि)** व पंचशील की याचना करनी पड़ती है और दस दिनों तक पॉचों शीलों का पालन करना होता है।

त्रिशरण (त्रिरत्न)

1. **प्रथम शरण– बुद्धं शरणं गच्छामि**– बुद्ध के जीवन को जानो तथा बुद्ध के सिद्धान्तों को जानो, परखो, आजमाओ और अनुभव से समझ में आये तो अपनाओ और न आये तो छोड़ दो, यही बुद्ध के शरण में जाने का अर्थ है।
2. **द्वितीय शरण– धम्मं शरणं गच्छामि–** अर्थात् बुद्ध ने जो जीवन में धारण करने योग्य धार्मिक बातों को सार बताया, उसे अपने जीवन में अपनाना ही धर्म की शरण में जाना है।
3. **तृतीय शरण– संघं शरणम् गच्छामि–** इसका आशय सत्संग से है। संघ में वही भिक्खू रहता है जिन्होंने अपने जीवन में बुद्ध की शिक्षाओं को अपनाया है, वही संघी है।

पंचशील

1. **पहला शील है– जीव हिंसा से विरत रहनाः**– इस शील से करुणा जाग्रत होती है। सभी प्राणियों को मृत्यु का भय होता है जैसे हमें अपने प्राणों का भय होता है। उसी तरह हमें अन्य प्राणियों के प्राणों को समझना चाहिए। हमें केवल मानव हिंसा ही नहीं करनी चाहिए वरन् अन्य प्राणियों की हत्या करने से भी बचना चाहिए। हमें मानवों, पशुओं और वनस्पतियों के साथ भी सौमनस्य रहना चाहिए।
2. **दूसरा शील है– चोरी से विरत रहनाः–** किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरे की श्रम से अर्जित धन–सम्पदा हस्तगत कर ले। दूसरे की वस्तुओं को हथियाने का प्रयास करना, दूसरे शील का उल्लंघन है। दूसरों को धोखा मत दो या अपने प्रभाव एवं सत्ता के प्रभाव का प्रयोग करके अन्य व्यक्ति की वस्तुऍं मत छीनो। हमें ऐसा मार्ग खोजना चाहिए जिससे अन्य लोगों को अपने पैरों पर खड़े होने में सहायता दी जा सके।
3. **तीसरा शील है– ब्रह्मचर्य का पालन करना और व्यभिचार से विरत रहनाः–** शरीर सम्बन्ध केवल पति–पत्नी के बीच रहना चाहिए। इस शील का

पालन करने से परिवार में विश्वास और हर्ष बढ़ता है और दूसरे लोगों को अनावश्यक कष्ट से बचाया जा सकता है। यदि प्रसन्नता चाहते हैं तो बहुत सी रखैलें मत रखें। पत्नी सदैव अपने पति के प्रति और पति अपनी पत्नी के प्रति सदैव निष्ठावान रहें।

4. **चौथा शील है– असत्य भाषण से दूर रहनाः–** ऐसे वचन मत बोलिए जिससे विभाजन हो या घृणा बढ़े। आपके वचन सत्य पर आधारित होने चाहिए। शब्दों का प्रयोग अधिकतम सावधानी से करें। ऐसे वचन मत बोलो, जिसमें सत्य को तोड़ा–मरोड़ा गया हो। जिस बात के विषय में आप स्वयं निश्चित न हों, ऐसी खबर दूसरों को न दें।

5. **पॉचवा शील है– मद्यपान या नशीले पदार्थों के सेवन से दूर रहनाः–** मद्यपान या उत्तेजक पदार्थों के सेवन से चित्त (स्मृति) की स्पष्टता समाप्त हो जाती है। जब कोई नशे में होता है तो वह स्वयं अपने लिए, अपने परिवार के लिए तथा अन्य लोगों के लिए अकथनीय कठिनाइयॉ उत्पन्न करता है। इस शील पर आचरण करने से शरीर और मन स्वस्थ रहता है। इस शील का पालन सभी कालों में किया जाना चाहिए।

शीलों का व्रत लेने के बाद मन को एकाग्र करना सिखाया जाता है जिसे आनापान कहते हैं।आनापान के लिए विपस्सनाचार्य से आनापान सिखाने की याचना करने की औपचारिकता करनी पड़ती है। 'आनापान' पालि शब्द है जो **आन+अपान** से बना है। 'आन' अर्थात् आने वाला श्वांस, 'अपान' अर्थात् जाने वाला श्वांस।श्वांस के आने–जाने को अपने ही अनुभव से अपने ही नासिका के दोनों द्वारों पर देखना सिखाया जाता है।

विपस्सना विज्ञान की कसौटी पर

विपस्सना पूर्णतः वैज्ञानिक ध्यानविधि है। विपस्सना साधना के अभ्यास से अनेकों मानसिक एवं शारीरिक रोग ठीक हो जाते हैं। मन की एकाग्रता और याददाश्त बढ़ती है, कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। रचनात्मक गुणों में निखार आता है, नैतिकता और अनुशासन तथा आत्मविश्वास के सद्गुणों में वृद्धि होती है, नशीले पदार्थों के आदी लोगों को इन व्यसनों से मुक्त होने में सहायता मिलती है। **मनोविकारों के दूर होने से मन निर्मल, शांत एवं प्रसन्न होता है तथा परिवार में सुख और शान्ति बढ़ती है।**

वैज्ञानिक अनुसंधान करके इस नतीजे पर पहुॅचे हैं कि **90 प्रतिशत से ज्यादा बीमारियॉ हमारे मन से उत्पन्न होती हैं।** दिल की बीमारियॉ, डायबिटीज, कमर दर्द, पीठ–दर्द, तनाव और त्वचा की अधिकतर बीमारियॉ हमारे मन में पैदा होने वाली घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, भय और लालच के कारण उत्पन्न होती हैं। दवाइयों से थोड़े समय के लिए आराम तो मिल जाता है लेकिन जड़ें वैसी ही रह जाती हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि जैसे ही क्रोध, घृणा और मानसिक तनाव पैदा करते हैं तो इसका सबसे पहला असर मस्तिष्क के बाहरी हिस्से सिरेब्रल कार्टेक्स पर पड़ता है। करीब 13 अरब स्नायु कोशिकायें क्रियाशील हो जाती हैं, जिसमें 10 अरब कोशिकाऍ मस्तिष्क के भीतर होती हैं। क्रोध और घृणा का संदेश 400 किमी0 प्रति घंटे की तेज रफ्तार से स्नायु तंत्र में दौड़ने लगता है। यह संदेश हाइपोथैलेमस में पहुॅचता है जहॉ से इसको गुर्दों के ऊपर मौजूद एड्रिनल ग्लैंड में भेज दिया जाता है और वहॉ पहुॅचते ही शरीर को बीमार करने वाले चार प्रकार के हारमोन्स बनने शुरु हो जाते हैं। ये हारमोन्स जो हमें लड़ने या भागने की शक्ति देते हैं, घृणा

और क्रोध के उत्पन्न होते ही बनने शुरु हो जाते हैं। इन हारमोन्स के बनते ही कलेजे (लिवर) से ग्लूकोज निकलना शुरु हो जाता है जिससे लड़ने और भागने की शक्ति आती है। इसके साथ ही हृदय तेज गति से धड़कने लगता है जिससे शरीर को अधिक खून भेजा जा सके। रक्त को तेजी से पम्प करने के लिए उसके गाढ़ेपन को कम करे पतला करने के लिए होठों और त्वचा से पानी रक्त में खींच लिया जाता है इसलिए गुस्सा और घृणा पैदा होने के थोड़ी देर बार हमारा होंठ, मुँह और गला सूखने लगता है। पाचन क्रिया बंद हो जाती हैं या बहुत धीमी हो जाती है।ब्लड–प्रेशर बढ़ जाता है। रक्त में थक्के बढ़ने लगते हैं, शरीर का पूरा रासायनिक संतुलन बिगड़ जाता है और रोगों से लड़ने की शरीर की अवरोधक क्षमता कम हो जाती है।बार–बार होने वाले क्रोध,घृणा और ईर्ष्या के कारण बार–बार एड्रीनिल और कार्टीसोल हारमोन्स बनते हैंऔर शरीर के रासायनिक संतुलन को बिगाड़ कर रोगों से लड़ने की अवरोधक क्षमता को कम कर देते हैं। हार्टअटैक (दिल का दौरा), हाई कोलेस्ट्राल, कैंसर, इन्फ्लुएंजा, चिकन पॉक्स (चेचक) जैसी बीमारियॉ लग जाती हैं। हारमोन्स के स्राव से पेप्सिन नामक एन्जाइम अधिक मात्रा में बनने लगता है जिसके बनने से पेट का म्युकस सूख जाता है और पेट में अल्सर हो जाते हैं।

हमारे मस्तिष्क का आकार हमारे शरीर का केवल दो प्रतिशत होता है लेकिन जो ऑक्सीजन हम श्वांस से लेते हैं **उसका बीस प्रतिशत उपयोग मस्तिष्क करता है।** क्रोध, घृणा और ईर्ष्या उत्पन्न होते ही मस्तिष्क की क्रियाशीलता बढ़ जाती है जिससे मस्तिष्क को और अधिक ऑक्सीजन और रक्त की जरूरत पड़ती है जिससे दिल पर और अधिक रक्त भेजने के लिए दबाव पड़ता है। बार–बार ऐसा होने से दिल का दौरा पड़ जाता है। साथ ही बुढ़ापा जल्दी आ जाता है।

हमारा मस्तिष्क कम्प्यूटर की तरह काम करता है। मन के विकार जैसे–क्रोध, लालच, वासना, ईर्ष्या, मोह, घृणा, राग और द्वेष कम्प्यूटर वायरस की तरह हमारे मस्तिष्क पर हमला करते हैं और जैसे वायरस कम्प्यूटर की सामान्य कार्यप्रणाली को तहस–नहस कर देता है उसी प्रकार मन के विकास रूपी वायरस हमारे मस्तिष्क और शरीर दोनों को प्रभावित करते हैं। जिस तरह कम्प्यूटर को सामान्य कार्यप्रणाली में लाने के लिए हम वायरस रोधी साफ्टवेयर लगाते हैं, उसी तरह शील सदाचार का पालन करके अपने अंदर करुणा और मैत्री जगाकर हम मन के विकारों का उपचार कर सकते हैं।

विपस्सना की विधि एवं सिद्धान्त

साढ़े तीन दिनों तक **आनापान** के द्वारा समाधि का अभ्यास करने के पश्चात् चौथे दिन विपस्सनाचार्य से विपस्सना सिखाने की याचना की औपचारिकता करनी होती है, जिससे विपस्सना के जरिये हमारे अंदर प्रज्ञा जाग्रत होती है। उससे ही अनित्य, परिवर्तन का बोध होने लगता है। मन को श्वांस के आधार से एकाग्र करते हुए श्वांस को सामान्य व नैसर्गिक रूप में लेते हुए शरीर के भीतर क्षण–प्रतिक्षण उत्पन्न होने वाली तथा परिवर्तित होते रहने वाली वेदना–संवेदना को दृष्टाभाव से, तटस्थ भाव से, उपेक्षा भाव से, यथाभूत जानना–सिखाया जाता है। देखते–देखते, जानते–जानते अपने भीतर लगातार वेदना–संवेदनाओं का वास्तविक नैसर्गिक स्वभाव समझ में आने लगता है। साधक अपने प्रत्यक्ष अनुभव से जान लेता है कि कोई भी वेदना चाहे दुःखद हो या सुखद हो या अदुःखद और असुखद हो, स्थायी न होकर परिवर्तनशील होती है और हर पल बदलती ही रहती है। हम चाहें भी तो उसका बदलना रोक नहीं सकते। शरीर पर प्रकट होने वाली वेदना अपने आप प्रकट होती है और देखते ही देखते समाप्त हो जाती है,

बदल जाती है। इसी तरह मन में प्रकट होने वाला हर विचार देखते ही देखते समाप्त हो जाता है, बदल जाता है।

जब साधक अपने स्वयं के प्रत्यक्ष अनुभव से यह जान लेता है कि हर वेदना परिवर्तनशील है, नश्वर है, अनित्य स्वभाव वाली है, हर पल बदलते रहने वाली है तो वेदनाओं के प्रति तटस्थ भाव बनने लगता है। वेदनाओं के प्रति जो राग–द्वेष जगता रहता था, वह कम होने लगता है और धीरे–धीरे समाप्त होने लगता है। जो वेदना अज्ञान में मन को बांधे जा रही थी, वही वेदना ज्ञान के प्रकाश में मन को विमुक्त करने लगती है। शरीर का वास्तविक दर्शन, चित्त का वास्तविक दर्शन, उनका अनित्य, अनात्म और हमेशा बदलते रहने वाला स्वरूप, विपस्सना द्वारा होने लगता है।

बार–बार विपस्सना करने से अनित्य का बोध निरन्तर बना रहता है जिसके फलस्वरूप बीत–रागता, बीत–द्वेषता और बीत–मोहता की ओर अग्रसर होने लगते हैं। जैसे–जैसे राग–द्वेष और मोह के बंधन शिथिल पड़ने लगते हैं वैसे–वैसे पहले से संचित विकारों की उदीर्णा होने लगती है और उनकी निर्जरा होने लगती है। परिणामस्वरूप मन में अपूर्व शांति का संचार होने लगता है। इस तरह काया और चित्त के अनित्य स्वभावी प्रपंच का साक्षी भाव से दर्शन करते–करते तत्सम्बन्धी आसक्तियों से छुटकारा पाता हुआ साधक काया और चित्त के परे इंद्रियातीत परम सत्य का साक्षात्कार कर लेता है जो कि नित्य है, ध्रुव है, अमृत है।

"विपस्सना का पथ" जैसा कि बुद्ध ने सिखाया है, गलत व क्षणिक मैं की रक्षा से उत्पन्न लालच, घृणा और मोह की नकारात्मकताओं से दूर, एक अनम्य आत्म– अवधारणा से उत्पन्न सद्गुणों और गुणों में जाकर खुलता है। अनित्य का एहसास स्वयं अपने तथा अपने चारों ओर मौजूद विश्व के भीतर एक गहरी अंतर्दृष्टि है। यह एक क्षणभंगुर विश्व में एक क्षणभंगुर जीवन से चिपके रहने की मूर्खता को उजागर करता है। यह आत्मासक्ति की मुट्ठी में जकड़ी गलत आशाओं को विश्राम देता है और अन्य सभी क्षणभंगुर जीवनों के साथ स्वतः पहचान के प्रवाह को सुसाध्य बनाता है। अनुभव से उत्पन्न एहसास कि सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, कि मैं अनित्य हूँ, से यथासम्भव गूढ़ समानुभूति उत्पन्न होती है। सभी प्राणियों के साथ कुटुम्ब की भावना जो अलग मैं के भ्रम से उत्पन्न वेदना से समान रूप से पीड़ित हैं, सभी प्राणियों के साथ भाईचारे की भावना जो अलगाव, मरण और मृत्यु की व्यथा से उद्धार के लिए तरसते हैं।

दसवें दिन मंगल–मैत्री–भावना साधना का अभ्यास कराया जाता है जिसमें साधक सम्पूर्ण विश्व के मंगल की कामना करता है।

वैज्ञानिकों ने अनुसंधान करके यह सिद्ध किया है कि क्रोध, घृणा और ईर्ष्या के कारण शरीर का बिगड़ा हुआ रासायनिक संतुलन मंगल–मैत्री की साधना करने से ठीक किया जा सकता है। मंगल–मैत्री के अभ्यास से बढ़ा हुआ कोलेस्ट्राल कम हो जाता है, रोगों से लड़ने की शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। यदि रोजाना थोड़ी देर के लिए विपस्सना करके चित्त को निर्मल कर मंगल–मैत्री की साधना की जाय तो बहुत–सी बीमारियॉ ठीक हो जाती हैं।

रोज के अभ्यास से मंगल–मैत्री की तरंगें हमारे आसपास के वातावरण को मंगल तरंगों से भर देती हैं जिससे हमारा मन–मस्तिष्क–वाणी और कर्म सभी प्रभावित होते हैं। समस्त जीवों के प्रति हमारे अंदर दया, करुणा और मैंत्री बढत्रती है जिससे जैव रासायनिक प्रतिक्रियायें और विद्युत चुम्बकीय तरंगें संतुलित रहती हैं। हमारा जीवन सुखमय बनता है और समाज तथा विश्व को हम खुशियॉ बांट सकते हैं। भगवान् बुद्ध ने मंगल–मैत्री के द्वारा ही डाकू अंगुलिमान और हाथी नालागिरी को अपने वश में किया था।

विपस्सना साधना द्वारा शील सदाचार के पालन और करुणा, मैत्री, मुदिता और समता जैसे उच्च मानवीय गुणों को विकसित करके हम शांति और सुख का जीवन जी सकते हैं। भगवान् बुद्ध केवल मार्गदाता थे। अपनी मुक्ति के लिए हर किसी को स्वयं अपने आप ही प्रयास करना होता है। हमें अपने स्वयं श्रम से तरना होता है, मुक्त होना होता है।

बुद्ध ने कहा, ''भिक्खुओं और भिक्खुनियों, पूर्णतम सचेत प्राणायाम का सतत् विकास किया जाय और निरन्तर साधना की जाय तो इसका धर्म–साधना में श्रेष्ठ परिणाम एवं लाभ प्राप्त होता है। इससे सचेतनास्था के चारों चरणों और महावैरोचन अथवा आत्म–जाग्रति के सातों पक्षों की साधना में सफलता प्राप्त हेाती है जिससे प्रज्ञा का उदय होता है और निर्वाण शांत की स्थिति तक पहुॅचना सम्भव होता है।

- **पहली श्वास की अनुभूतिः–** गहरी सॉस खींचते (पूरक प्राणायाम) समय मुझे ज्ञात हो कि मैं गहरी श्वास छोड़ रहा हूॅ।

- **दूसरी श्वासः–** छोटी श्वास खींचते समय मुझे ज्ञात हो कि मैं छोटी श्वास ले रहा हूॅ। लघु श्वास छोड़ते समय भी मुझे ज्ञात हो कि मैं लघु श्वास छोड़ रहा हूॅ।

अनुभूतिः– इन दोनों श्वासों से विस्मरण और अनावश्यक विचारों का आना समाप्त होता है। साथ ही संचेतना बढ़ती है और जीवन के वर्तमान क्षणों का सामना करने की सामर्थ्य आती है। संचेतना का अभाव ही विस्मरण है। पूर्ण संचेतन प्राणायाम से आप अपने तेजस स्वरूप को अपनाते हैं और तदनुसार जीवन्तता की ओर लौटते हैं।

- **तीसरी श्वासः–** भीतरी श्वास खींचते समय मैं अपनी सम्पूर्ण काया के प्रति सजग हूॅ और उस श्वास के छोड़ते समय भी अपनी सम्पूर्ण काया के प्रति जागरुक हूॅ।

अनुभूतिः– इस श्वास से आप अपने शरीर की धारणा करते हैं और अपने शरीर के साथ जीवन्त सम्बन्ध जोड़ते हैं। सम्पूर्ण शरीर और शरीर के समस्त अंगों के प्रति जागरुक होने से आप अपने शरीर की अद्भुतता की अनुभूति करते हैं और आपके शरीर के साथ घटित होने वाली जन्म और मरण की प्रक्रिया को भी समझ पाते हैं।

- **चौथी श्वासः–** मैं भीतरी श्वास (पूरक) खींच रहा हूॅ और अपनी सम्पूर्ण काया को सहज एवं शान्त बना रहा हूॅ। मैं श्वास का **रेचन** कर रहा हूॅ और इससे अपनी सम्पूर्ण काया को सहज एवं शान्त बना रहा हूॅ।

अनुभूतिः– इस श्वास से आपके शरीर को सहजता एवं शान्ति प्राप्त होती है जिससे हम उस अवस्था में पहुॅच जाते हैं जिसमें चित्त, शरीर, श्वास प्रश्वास एक सामंजस्यपूर्ण वास्तविकता बन जाते हैं।

- **पॉचवी श्वास एवं लाभः–** मैं श्वास भीतर खींच रहा हूॅ और आनन्द का अनुभव कर रहा हूॅ। मैं श्वास का रेचन कर रहा हूॅ और आनन्द का अनुभव कर रहा हूॅ।

- **छठी श्वासः–** मैं भीतर श्वास खींचते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूॅ और श्वास रेचन के साथ प्रसन्नता की अनुभूति कर रहा हूॅ।

अनुभूतिः– इन दो श्वासों के बीच आप भावनाओं के जगत के पार चले जाते हैं। इन दो श्वासों से शान्ति और आनन्द उत्पन्न होता है जिससे चित्त और शरीर को पोषण प्राप्त होता है और आप 'स्व' में स्थित हो जाते हैं। वर्तमान क्षण के प्रति पूर्ण जागरुक होते हैं और आपके अंतस में प्रसन्नता और आनन्द का उदय होना सम्भव होता है।

- **सातवीं श्वास और लाभः–** मैं श्वास पूरक अर्थात् खींच रहा हूॅ अैर अपने चित्त में चल

रही गतिविधियों के प्रति सचेत हो रहा हूँ। मैं श्वास के रेचन के समय भी अपने चित्त की गतिविधियों के प्रति जागरुक हो रहा हूँ।

- **आठवीं श्वासः–** मैं श्वास ले रहा हूँ और अपने चित्त की गतिविधियों को सहजता और शान्ति की ओर ले जा रहा हूँ। मैं श्वास का रेचन कर रहा हूँ और अपने चित्त की गतिविधियों को सहज एवं शान्त कर रहा हूँ।

अनुभूतिः– इन दो श्वासों के माध्यम से अपने मन में उठ रही सभी भावनाओं को स्पष्टतः समझ रहे होते हैं फिर चाहे वे भावनाएँ सुखद, दुःखद या तटस्थता भाव की ही क्यों न हो, और इस प्रकार उन भावनाओं को शान्त और कोमल बनाने में सक्षम होते हैं।

- **नौवी श्वास एवं अनुभूतिः–** मैं श्वास ले रहा हूँ और अपने चित्त के प्रति सचेतन हूँ। मैं श्वास को रेचन कर रहा हूँ और चित्त के प्रति सचेत हूँ।

- **दसवीं श्वास एवं अनुभूतिः–** मैं श्वास ले रहा हूँ और अपने चित्त को हर्षयुक्त और शान्त बना रहा हूँ। मैं श्वास का रेचन कर रहा हूँ और चित्त को हर्षयुक्त और शान्त कर रहा हूँ।

- **ग्यारहवीं श्वास एवं अनुभूतिः–** मैं श्वास खींच रहा हूँ और अपने चित्त को एकाग्र कर रहा हूँ। मैं श्वास का रेचन कर रहा हूँ और चित्त को एकाग्र कर रहा हूँ।

- **बारहवीं श्वासः–** मैं श्वास खींच रहा हूँ और अपने चित्त को मुक्त कर रहा हूँ। मैं श्वास का रेचन कर रहा हूँ और अपने चित्त को मुक्ति प्रदान कर रहा हूँ।

अनुभूतिः– बारहवीं श्वास के द्वारा आप चित्त की सभी बाधाओं को समाप्त करने में सक्षमता प्राप्त कर लेते हैं। अपने चित्त को प्रकाशवान बनाकर आप सभी मानसिक संकल्प–विकल्पों का मूल कारण देख–समझ पाते हैं और इस प्रकार उन बाधाओं को समाप्त करने की स्थिति में आ जाते हैं।

- **तेरहवीं श्वास और अनुभूतिः–** मैं श्वास भीतर खींच रहा हूँ और सभी धर्मों की अनित्य प्रकृति को देख रहा हूँ। मैं श्वास का रेचन करते हुए सभी धर्मों की अनित्यता की अनुभूति कर रहा हूँ।

- **चौदहवीं श्वास एवं अनुभूतिः–** मैं श्वास भीतर खींच रहा हूँ और सभी धर्मों का क्षय होते देख रहा हूँ। मैं श्वास के रेचन के समय भी सभी धर्मों को क्षय होते देख रहा हूँ।

- **पन्द्रहवीं श्वास एवं अनुभूतिः–** मैं श्वास भीतर खींच रहा हूँ और मुक्ति की धारण कर रहा हूँ। मैं श्वास के रेचन में भी मुक्ति की ही धारणा कर रहा हूँ।

- **सोलहवीं श्वास एवं अनुभूतिः–** मैं श्वास खींच (पूरक) रहा हूँ और जगत में आवागमन की परिसमाप्ति की धारणा कर रहा हूँ। श्वास के रेचन के समय भी मैं जागतिक आवागमन की परिसमाप्ति की धारणा कर रहा हूँ।

इन चार श्वासों के माध्यम से साधक चित्त की तन्मयताओं को पीछे छोड़ देता है और समस्त धर्मों के प्रकृत स्वरूप को देखने पर ध्यान केन्द्रित करता है। पहली स्थिति तो सभी धर्मों की अनित्यता की अवस्था है। जग सभी धर्म अनित्य है तो उनका क्षय होना भी निश्चित है। जब आप सभी धर्मों की अनित्यता और उनके क्षय के तथ्य से साक्षात्कार कर लेते हैं, आप जन्म–मरण के अनंत चक्र से बंधे नहीं रहते। उसके बाद आप **निर्वाण शान्त की स्थिति** प्राप्त कर लेते हैं।

निर्वाण शान्त का अर्थ जीवन विरक्ति अथवा जीवन से भागना नहीं है। प्रत्युत सभी प्रकार की कामनाओं और मोहों की माया से मुक्त हो जाना है जिससे जन्म–मरण के अन्तहीन चक्र से बंधे रहने की दुःखद अवस्था समाप्त हो जाये।

एक बार मुक्त हो जाने पर आप जीवन जीते हुए भी शान्ति और आनन्द की अवस्था में रह सकते हैं। उसके बाद जीवन के साथ किसी प्रकार का बंधन शेष नहीं रह जाता है।

इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने **पूर्णतया** सचेत श्वसन क्रिया (प्राणायाम) को सोलह प्रक्रियाओं के माध्यम से बताया कि किस प्रकार शरीर, भावनाओं, चित्त और चित्त की तन्मयताओं को गहन दृष्टा बनकर देखना है। उन्होंने प्राणायाम की इन सोलह प्रक्रियाओं से **महावैरोचन** अथवा **आत्म–जाग्रति** के सात तत्त्वों से इस प्रकार सम्बद्ध करके दिखाया कि इन प्रक्रियाओं से पूर्ण सचेत ध्यान, धर्मों की मूल प्रकृति की खोज, ऊर्जा, आनन्द, सहजावस्था, ध्यान समाधि और निर्वाण शान्त की प्राप्ति हो सकती है।

सच्चा सुख इसी जीवन में

महात्मा बुद्ध ने अपनी देशना में यह भी कहा, ''सच्चा सुख इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है, विशेषतः उस अवस्था में जब निम्नलिखित बातों का पालन करोः–

1. गुणी लोगों से सम्बन्ध बढ़ाओ और घटिया मार्ग त्याग दो।
2. आत्मसाधना और सच्चरित्रता बढ़ाने वाले वातावरण में रहो।
3. सद्धर्म और शील अपनाने और अपना कार्य गहनता से कर सकने की अवसरों को बढ़ाते रहो।
4. अपने माता–पिता, पति–पत्नी और बच्चों की अच्छी तरह देखभाल करने के लिए समय निकालो।
5. अन्य लोगों को अपने समय, साधनों और प्रसन्नता में भागीदारी बनाओ।
6. सद्गुण अपनाने के लिए अवसर जुटाओ और मद्यपान एवं जुए से बचो।
7. विनम्रता, कृतज्ञता और सादा जीवनयापन की कला सीखो।
8. भिक्खुओं के निकट आने के अवसर में रहो जिससे सद्धर्म का अध्ययन कर सको।
9. चार आर्य सत्यों के आधार पर जीवनयापन करो।
10. ध्यान साधना सीखो, जिससे दुःखों एवं चिन्ताओं का नाश हो सके।

भगवान् बुद्ध के 21 अनमोल विचार

1. हम जो कुछ भी हैं वो हमने आज तक क्या सोचा इस बात का परिणाम है। यदि कोई व्यक्ति बुरी सोच के साथ बोलता या काम करता है तो उसे कष्ट ही मिलता है। यदि कोई व्यक्ति शुद्ध विचारों के साथ बोलता या काम करता है तो उसकी परछाई की तरह खुशी उसका साथ कभी नहीं छोड़ती।
2. हजारों खोखले शब्दों से अच्छा वह एक शब्द है जो शान्ति लाये।
3. सभी बुरे कार्य मन के कारण उत्पन्न होते हैं। अगर मन परिवर्तित हो जाये तो क्या अनैतिक कार्य रह सकते हैं?
4. एक जग बूँद–बूँद भर कर भरता है।
5. स्वास्थ्य सबसे बड़ा उपहार है, संतोष सबसे बड़ा धन है, वफादारी सबसे बड़ा सम्बन्ध है।
6. जैसे मोमबत्ती बिना आग के नहीं जल सकती, मनुष्य भी आध्यात्मिक जीवन के बिना नहीं जी सकता।
7. तीन चीजें ज्यादा देर तक नहीं छुप सकती– सूरज, चंद्रमा और सत्य।

8. अपने मोक्ष के लिए खुद ही प्रयत्न करें, दूसरों पर निर्भर न रहें।

9. तुम अपने क्रोध के लिए दण्ड नहीं पाओगे, तुम अपने क्रोध द्वारा दण्ड पाओगे।

10. किसी जंगली जानवर की अपेक्षा एक कपटी और दुष्ट मित्र से ज्यादा डरना चाहिए। जानवर तो बस आपके शरीर को नुकसान पहुँचा सकता है, पर एक बुरा मित्र आपकी बुद्धि को नुकसान पहुँचा सकता है।

11. आपके पास जो कुछ भी है, उसे बढ़ा–चढ़ा कर मत बताइये और न ही दूसरों से ईर्ष्या कीजिये। जो दूसरों से ईर्ष्या करता है उसे मन की शान्ति नहीं मिलती।

12. घृणा, घृणा से नहीं प्रेम से खत्म होती है, यह शाश्वत सत्य है।

13. वह जो पचास लोगों से प्रेम करता है उसके पचास संकट हैं, वो जो किसी से प्रेम नहीं करता, उसके एक भी संकट नहीं है।

14. क्रोध को पाले रखना गर्म कोयले को किसी और पर फेंकने की नीयत से पकड़े रहने के समान है, इसमें आप ही जलते हैं।

15. चाहे आप जितने पवित्र शब्द पढ़ लें या बोल लें, वो आपका क्या भला करेंगे जब तक आप उन्हें उपयोग में नहीं लाते?

16. मैं कभी नहीं देखता कि क्या किया जा चुका है, मैं हमेशा देखता हूँ कि क्या किया जाना बाकी है।

17. बिना सेहत के जीवनयापन नहीं है, बस पीड़ा की एक स्थिति है, मौत की छवि है।

18. हम जो सोचते हैं, वो बन जाते हैं।

19. शक की आदत से भयावह कुछ भी नहीं है। शक लोगों को अलग करता है। यह एक ऐसा जहर है जो मित्रता खतम करता है और अच्छे रिश्तों को तोड़ता है। यह एक कॉटा है जो चोटिल करता है, एक तलवार है जो वध करती है।

20. सत्य के मार्ग पर चलते हुए कोई दो ही गलतियॉ कर सकता है, पूरा रास्ता न तय करना और इसकी शुरुआत ही न करना।

21. किसी विवाद में हम जैसे ही क्रोधित होते हैं, हम सच का मार्ग छोड़ देते हैं और अपने लिए प्रयास करने लगते हैं।

'' तुम्हेहि किच्चमातप्पं, अक्खातारों तथागता (धम्मपद 276,)''

अर्थात्

''मैं तो मार्ग आख्यात करता हूँ तुम्हारी मुक्ति के लिए तपना तो तुम्हें ही पड़ेगा।''

''अप्पा दीपो भवः''

सन्दर्भ सूची

1. भगवान् बुद्ध धम्म–सार व धम्म–चर्या, आनन्द कृष्ण।
2. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, ''भगवान् बुद्ध और उनका धम्म''।
3. आचार्य सत्यनारायण गोयनका, ''क्या बुद्ध दुक्खवादी थे?''
4. आचार्य सत्यनारायण गोयनका, ''आत्मकथन''
5. श्रीमद् भगवतमहापरुाणम्, गीता प्रेस।

6. जहं जहं चरन परे संतन के, तिक न्यात द्वन्द्व।

7. दो कदम बुद्धत्व की ओर – श्री श्री रविशंकर जी।